ओ३म्

गोवर्द्धन-ज्योति

(मन्त्र-शतक)

षष्ठ रश्मि



आचार्य गोवर्द्धन शास्त्री जी की पुण्यतिथि १९ मार्च १९८४ पर संघड विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर के आर्थिक सौजन्य से गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय की ओर से स्वाध्याय प्रेमियों के कर कमलों में सादर सस्नेह भेंट—

ओ३म्

'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'

असतो मा सद्गमय-तमसो मा ज्योतिर्गमय-मृत्योर्मामृतंगमय

गोवर्द्धन-ज्योति

(मन्त्र-शतक)

षष्ठ रश्मि

संकलन कर्ता

प्रो० चन्द्रशेखर त्रिवेदी

प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

श्री आचार्य गोवर्द्धन शास्त्री एम०ए०एम० ओ० एल० की पुण्यस्मृति में 'गोवर्द्धन-ज्योति' के प्रकाशनार्थ संघड़ाविद्या सभा ट्रस्ट, जयपुर ने गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय को १००० रुपये का आर्थिक सहयोग प्रदान किया।

प्रकाशक

कैप्टेन देशराज

स० मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल कांगड़ी, हरिद्वार (उ० प्र०)

आवृत्ति, १९८४ मूल्य-श्रद्धापूर्वक स्वाध्याय

समर्पण

ये हैं वे ब्रह्मचारी जिनके प्रति यह शतक समर्पित है और जिन्होंने बड़ी श्रद्धा से इसका स्मरण किया है–

क्रमसं०	नाम	पिता/संरक्षक का नाम	जिला
दशम कक्षा—			
१	अजय कुमार	सर्वश्री हीरा लाल जी	गोंडा
२	प्रताप सिंह	प्यार सिंह जी	विलासपुर (हि.प्र.)
३	पूरनचन्द्र	बालकृष्ण जी	नैनीताल
४	हरि शंकर	गिरीशचन्द्र जी	पिथौरागढ़
५	प्रदीप कुमार	रामधनीशाह जी	कलकत्ता
६	अनिल कुमार	अतरसिंह जी	मुजफ्फरनगर
७	वीरेन्द्र प्रताप	राम प्यारे सिंह जी	गोरखपुर
८	अनीत कुमार	राम प्रसाद जी	रामपुर
नवम कक्षा—			
९	मदन मोहन	देवी प्रसाद जी	कानपुर
१०	ज्ञानेन्द्र कुमार	शांति स्वरूप जी	दिल्ली
११	संजय कुमार	विजय कुमार जी	बैतूल (म.प्र.)
१२	प्रदीप कुमार	हरिहर प्रसाद जी	वाराणसी
१३	भगत सिंह	रामचन्द्र जी	हरियाणा
१४	चन्द्रशेखर	सुरेशचन्द्र जी	चम्पारण
१५	सत्यपाल	मगन सिंह जी	बिजनौर
१६	चरण सिंह	हरपाल सिंह जी	बिजनौर
१७	सुनीत कुमार	रामप्रसाद जी	रामपुर

अष्टम कक्षा—

१८	जितेन्द्र कुमार	मामचन्द जी	मुजफ्फरनगर
१८	राजेश्वर प्रसाद	नागेन्द्र प्रसाद जी	चम्पारण
२०	अजय कुमार	हरिपाल सिंह जी	मुजफ्फरनगर
२१	राजेन्द्र कुमार	जगन्नाथप्रसाद जी	वाराणसी
२२	मनोज कुमार	नन्दकिशोर जी	बदायूं

सप्तम कक्षा—

२३	चरण सिंह	मूलचन्द्र जी	मु० नगर
२४	जोगेन्द्र कुमार	हरस्वरूप जी	दिल्ली
२५	मनजीत सिंह	,,	,,
२६	रतिपाल सिंह	टीकाराम जी	मुरादाबाद
२७	राजीवरंजन	सुरेन्द्रकुमार जी	पटना
२८	सुनील कुमार	रामगोपाल जी	मु० नगर
२६	कैलाश कुमार	जसवन्त सिंह जी	बदायूं
३०	अखण्ड प्रताप	धर्मवीर सिंह जी	बिजनौर
३१	दिलीप कुमार	अशर्फी प्रसाद जी	मुंगेर
३२	विनोद कुमार	रामसिंह जी	देवरिया
३३	ओमप्रकाश	जयपाल सिंह जी	मुरादाबाद
३४	जितेन्द्र कुमार	जयदेव जी	बिजनौर

षष्ठ कक्षा—

३५	संजीवकुमार	सत्यवीर सिंह जी	दिल्ली
३६	सत्यवीर सिंह	रुपनारायण जी	,,
३७	देवेन्द्र कुमार	प्रकाशचन्द्र जी	,,
३८	दीपक कुमार	विशम्बरदास जी	,,

३९	हरिओ३म्	विशम्भर दयाल जी	,,
४०	कमल किशोर	दलवीरसिंह जी	सहारनपुर
४१	अरूणकुमार	वेंकटेश्वर प्रसाद जी	इलाहाबाद
४२	मनोज कुमार	धर्मवीर सिंह जी	मु० नगर
४३	राजेश कुमार	अनूपसिंह जी	मु० नगर
४४	राजीव कुमार	शम्भूदयाल जी	लखीमपुर
४५	चन्द्रप्रकाश	सुरेशचन्द्र जी	चम्पारण
४६	नारायण दत्त	प्रेमदत्त जी	पटना
४७	प्रहलाद सिंह	सरदार सिंह जी	मु० नगर
४८	महावीर सिंह	द्वारका प्रसाद जी	बदायूं
४९	संजीव कुमार	राकेश कुमार जी	दिल्ली
५०	जितेन्द्र कुमार	रमेशचन्द्र जी	बुलन्दशहर
५१	खड़कसिंह	कर्णबहादुर जी	देहरादून
५२	नरेन्द्र दत्त	योगेश्वर दत्त जी	दिल्ली
५३	दीपक कुमार	हरिश्चन्द्र जी	कानपुर
५४	गिरिजाशंकर	रामजी प्रसाद जी	चम्पारण
५५	दिनेश कुमार	श्रीपाल जी	बदायूं



आशीर्वचन्

गोवर्धन ज्योति की षष्ठ रश्मि के रूप में श्री चन्द्र शेखर त्रिवेदी ने १00 मंत्रों की जो व्याख्या की है वह सर्वसाधारण के लिये बहुत उपयोगी है । श्री त्रिवेदी जी का प्रयास वन्दनीय है ।

सत्यकाम विद्यालंकार

निवेदन

गोवर्धन ज्योति की यह षष्ठ रश्मि वेद का प्रकाश करने हेतु आपकी सेवा में उपस्थित है। इस बार शक हुआ कि कहीं यह रश्मि बादलों से ढक तो नहीं जायेगी।

गुरू त्रिवेदी कई कारणों से उद्विग्न थे। 'इस कार्य का विश्वविद्यालय से कोई सम्बन्ध नहीं है', अन्य गुरुजन की तरह वह भी यह कह सकते थे। किन्तु यह कार्य उन्होंने अपने अन्तः करण की आवाज पर उठाया था। वेद में प्रवेश के बाद उन्हें इस कार्य में आनन्द भी आने लगा था। फिर ब्रह्मचारियों के वह श्रद्धापात्र भी बन चुके थे। ब्रह्मचारी भी इस कार्यक्रम में आनन्द अनुभव करने लगे थे। वह गुरूजी के पास पहुँचे- गुरूजी, वेद मंत्रो का कार्यक्रम कब आरम्भ होगा? पहले एक दो ब्रह्मचारी गये फिर एक दिन तो आठ ब्रह्मचारियों ने घेर लिया। गुरूजी ने कहा - अच्छा २६ सितम्बर से। तो २६ सितम्बर को यज्ञ हुआ और निश्चित गति से पूर्णाहुति की ओर अग्रसर हुआ।

इसमें कोई शक नहीं कि गुरुकुल के वातावरण में इन दिनों जो सुधार हुआ है, उस का श्रेय जितना भी गुरू त्रिवेदी को दिया जाय, कम है। न केवल यह, मैं तो समझता हूँ आज देश में जो उत्पात हो रहे हैं, जो बईमानी हो रही है, जो भय और त्रास का बातावरण बन रहा है, उसका एक मात्र इलाज वेद का प्रचार तथा वेदानुकूल आचरण है।

चुन्नीलाल अरोड़ा को अचानक लखनऊ से दिल्ली जाना पड़ा। उनकी पत्नी सुधा बोली "इतनी जल्दी रेल का टिकट कैसे

मिल जायेगा" ? कहने लगे, "अरी भोली, दस रूपये अधिक देने पड़ेंगें। बस टिकट मिल जायेगा"। जबर सिंह सेंगर पर घातक प्रहार हुआ। डरते रहे, मुलजिस जल्दी जमानत पर रिहा हो जायेगा क्योंकि उसकी पीठ पर रूपयों की थैली है। लड़के को कालिज में प्रवेश चाहिए। अमीर बाप का बेटा निश्चिन्त है। अन्य भी राजनेता की सिफारिश तलाश करते हैं। नौकरी हो' प्रमोशन हो' लोन लेना हो, यहाँ तक कि अब तो कहते हैं, गांव को मनिआर्डर भेजो तो डाकिया उसमें से भी अपना भाग रखवा लेता है। यह देवताओं का भाग तो देना पड़ेगा। यही तो वेद की आज्ञा है न ?

वेद कहता है न, इदन्मम। फिर तुम कुछ भी क्यों चाहते हो ? सभी कुछ देवताओं का है - उन्हीं को अर्पण करो। यही है न वेद की शिक्षा ? यह जो कुछ भी इस जगत में हैं, उसमें ईश्वर का वास है। उससे त्यागा हुआ ही भोगो। दूसरे के धन की लालसा मत करो। यह है वेद की शिक्षा का विकृत नशीला स्वरुप

वेद को समझने समझाने की आवश्यकता है। वेद भक्त गुरुजन के सामने यही कर्तव्य है। यह उनका कर्म है। आज इंसेट के, दूर दर्शन के, चल चित्रों के, आकाशवाणी के युग में इतने जबरदस्त साधन प्रचारकों के हाथ में आ गये हैं कि मनुष्य चकाचौंध रह जाता है। वेद के प्रचारक पीछे रह गये तो अवैदिक विचार फैलेंगे ही।

मुझे अच्छा नहीं लगा जब यह पता चला कि स्वामी विरजानन्द के जन्म दिवस पर अथवा ऋषि बोधोत्सव पर गुरुकुल विश्वविद्यालय, आर्यसमाज गुरुकुल द्वारा कोई समारोह करते

विचार/प्रबन्ध नहीं है । केवल अवकाश ही घोषित किया गया है । क्या यही हमा ा वैदिक पथ है ? क्या इस प्रकार हम ऋषि के ऋण से उऋण हो पायेंगे ? क्या इस प्रकार हम ऋषि का संदेश विश्वभर मे (घर-घर में) पहुँचा पायेंगे ? चिराग तले अन्धेरा होता है, शायद आप यह कह कर छुटकारा पाना चाहेंगे। पर यहां तो चिराग बुझ रहा है । उनमें तेल कौन डालेगा। ?

क्या गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के अध्यापकों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि ऋषि के संदेशों को समझें, दूसरों को समझायें? आज देश पर जो संकट है, जो बादल छाये हैं, क्या उनको दूर करना आर्यसमाज का कर्तव्य नहीं है ? हमें सोचना है, गुरुकुल की स्थापना क्यों हुई थी । हम सभी गुरुकुल के नाविक हैं । हमें कर्तव्य बोध करना होगा । अपने लक्ष्य को समझना होगा - और उस और कृतसंकल्प होकर वढ़ना होगा । ध्रुव की तरह, प्रहलाद की तरह ।

यह वर्ष ऋषि की निर्वाण शताब्दी का वर्ष है । ऋषि ने वेद ज्ञान को सर्वजन हिताय घोषित किया और उसे तथाकथित ब्राह्मण वर्ग को कैद से छुडाकर सब को वेद पढ़ने पढ़ाने और सुनने सुनाने का अधिकार दिया और आर्यो पर दायित्व डाला कि वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना उनका परम धर्म है । आज गिनती करें कि गुरुकुल के अध्यापकों में से कितने ऐसे है जिन्हें सौ वेद मन्त्र अर्थ सहित कण्ठस्थ हैं । वेदाचरण तो बाद में होगा । वेद क्या कहते हैं ? वेद मार्ग क्या है ? इसका ही पहले बोध हो । क्या आपने कभी सोचा है कि आपके कितने विद्यार्थियों को ऋषि बोधोत्सव का महत्व मालूम है ? कितनों को ऋषि की जीवनलीला का ज्ञान है ? ऋषि ने हम पर जो ऋण लादा है उस से

अभिज्ञ हैं ? आर्य जगत विश्वविद्यालय के गुरुजन से अपेक्षा करता है कि वह ऋषि निर्वाण वर्ष में कम से कम १०० वेद मन्त्र कण्ठस्थ करे। विद्यार्थियों की बारी तो बाद में आयेगी।

मुझसे एक पत्रकार ने पूछा कि अपनी विदेशयात्रा के बाद आप क्या क्या नई प्रवृत्तियां जारी करने की सोच रहे है। मैंने कहा 'नई प्रवृत्तियां, तो वहां मुझे कुछ नजर नहीं आई। हाँ, मेरी गुरुकुल की पुरातन धारणाओं के बारे में जो विचार थे, सम्पुष्ट हो गये हैं। गुरुकुल को अपने पुरातन, सनातन, चिर-स्थायी आदर्शों को मूर्तरूप देना है। इस हेतु गुरुकुल के गुरूजन को संकल्प लने है और कार्यरत होना है।

विदेश में वक्त की पाबन्दी है। लोग पुरुषार्थी, उद्यमी हैं, प्रतिबद्ध हैं। १८, १८ घंटे दत्त चित्त होकर पुस्तकालयों में, लेबोरेट्रीज में कार्य करते हैं। गप-शप में वक्त बरबाद नहीं करते। प्रकाशन, प्रसार और विस्तार में लगे रहते हैं। सफाई और सौंदर्य का बहुत ही ध्यान करते हैं। अपने इर्द-गिर्द स्वच्छता, सुन्दरता का वातावरण बनाये रखते हैं विद्यार्थी विद्याध्ययन, खेल-कूद में रूचि पूर्वक भाग लेते हैं। विश्वविद्यालयों में हड़तालों का तो सवाल ही नहीं। गुरु शिष्य सम्बन्ध निकटतम हैं। ज्ञान-पिपासा तीव्र है। ज्ञान की मानो अनवरत सरिता बहती रहती है। जब जो चाहे, जितना चाहे स्नान कर ले।

वह लोग पूरे वर्ष कार्य करते हैं। सप्ताह में ५ दिन डट कर काम करते हैं। अन्य अवकाश बहुत ही कम होते हैं। ऐसा लगता है प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी प्रगति के कार्यक्रम की योजना बना रखी है। उस पर अग्रसर हैं। उनमें असतोष न हो, ऐसी बात नहीं है। आखिर वह भी मनुष्य हैं। वह भी काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार के शिकार हैं। लेकिन मैंने देखा कि आर्य समाज के

दसवें सिद्धान्त के अनुसार जहां वे व्यक्तिगत कार्य में स्वतन्त्र हैं, सामाजिक के कार्यों में परतन्त्र हैं।

सारांश में मैंने उक्त पत्रकार को बतलाया कि ऋषि ने जो दस मन्त्र हमें दिये हैं, उनके बाद हमें किसी से कुछ सीखने नहीं जाना है। केवल यह देखना है कि हम कहां तक उस पर अमल कर रहे हैं।

वेद की जाह्नवी पौराणिक पुरोहितों जटा में फसं गई थी। भगीरथ प्रयत्न से दयानन्द ने उसको इनकी जटा से विमुक्त किया और भारत वर्ष एवं संसार के हित के लिये अग्रसारित किया। उन्होंने कहा कि आर्य कोई जाति विशेष नहीं है। आर्य श्रेष्ठ पुरुष हैं, निर्भय हैं, अभय हैं,उन्नत पुरुष हैं, आत्म-विजयी हैं–यहा है वेद का संदेश, हमने इसको अपनाना है, तभी हम आर्य कहलायेंगे।

विश्व में अनेक आर्यपुरुष हैं। वह आगे बढ़ रहे हैं। हमें उनके साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना है। ऐसा न करेंगे तो फिर पिछड़ जायेंगे। गुरुकुल का अध्यापक समुदाय बहुत कुछ आज इस दिशा में अग्रसर है। यही आशा की किरण है।

मैं गुरू त्रिवेदी को उनका संकल्प निभाने पर बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके सहयोगी अन्य गुरूजन भी उनका अनुसरण करेंगे और सही मानों में गुरू कहलाने के हकदार बनेंगे।

बलभद्र कुमार हूजा
कुलपति
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
हरिद्वार (उ० प्र०)

गणतंत्र दिवस
२६ जनवरी, १९८४

गोवर्द्धन ज्योति

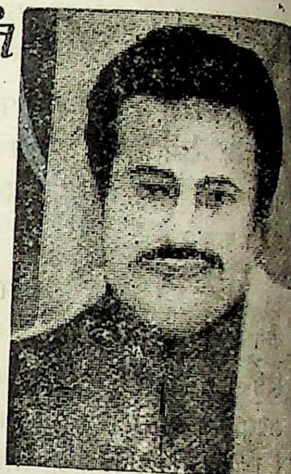
के

प्रेरणास्रोत

स्व०आचार्यश्री गोवर्द्धन शास्त्री

का

जीवन परिचय



सन् १८८१ ई० में जब महर्षि दयानन्द सोई आर्य जनता को उद्‌बोधित कर रहे थे, उसी समय ग्राम तोपा शरीफ, जिला डेरा गाजीखान (पाकिस्तान) के एक सम्भ्रान्त परिवार में बालक गोवर्द्धन का जन्म हुआ। बाल्यकाल से ही शिक्षा के प्रति उनकी रूचि एवं कार्य को निष्ठापूर्वक करने की भावना से ही अनुमान लगाया जाता था कि वे भविष्य में आर्य मान्यताओं के अनुरूप कुछ नवीन कार्य सम्पादित करेंगे।

१९०५ ई० में राजकीय कॉलिज लाहौर से स्नातक होने के पश्चात् महर्षि दयानन्द के मिशन को अग्रसर करने के उद्देश्य से स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुन्शीराम) द्वारा संस्थापित गुरुकुल कांगड़ी (पुण्य भूमि, जि० बिजनौर) में अध्यापन कार्य करने लगे। अंग्रेजी माध्यम से विज्ञान की शिक्षा की दुरुहता को भांप-कर उन्होंने भौतिकी एवं रसायन विज्ञान की पुस्तकों का हिन्दी

अनुवाद किया, जो इस दिशा में प्रथम महत्वपूर्ण कदम था। वहीं १६०८से१६१४तक इन्होंने मुख्याध्यापक का कार्यभार सम्भाला। स्वामी श्रद्धानन्द जी इनकी अटूट लग्न व संस्था के प्रति निष्ठा देखकर अत्यन्त प्रभावित हुए। अनुशासन के लिये ये अत्यधिक प्रसिद्ध हुए।

इसी प्रकार उन्होंने फ्रेंच दार्शनिक रुसो के विख्यात ग्रन्थ 'एमोल' का मां और बच्चा' नाम से हिन्दी में अनुवाद किया। बालकों के पालन पोषण सम्बन्धी अन्य उपयोगी पुस्तकों को भी रचना की।

सन् १६१४ ई० में गोवर्द्धन जी गुरुकुल कांगड़ी छोड़कर दिल्ली पहुँचे और हिन्दी साप्ताहिक पत्र 'प्रह्लाद' का सम्पादन काय आरम्भ किया।

सन् १६१५ ई० में उन्होंने रामजस हाई स्कूल दिल्ली में मुख्याध्यापक का पद सुशोभित किया तथा शिक्षा को नवीन दृष्टि देकर आर्य जनता के सम्मुख एक उदाहरण प्रस्तुत किया।

वे १६१८ ई० में एम. ए. (संस्कृत) तथा १६२२ ई० में एम. ओ. एल. शास्त्री उपाधि से समलंकृत हुए।

सन् १६२० ई० में उन्होंने डेरा गाजीखान में हो एंग्लो संस्कृत हाई स्कूल का स्थापना की तथा १६२४ ई० तक मुख्याध्यापक के रूप में विद्यालय को नवीन दिशा दी।

सन् १६२० में ही अपनी संघड़ तहसील के नाम पर 'संघड़ विद्या सभा' का स्थापना की तथा जन्म ग्राम तोंषा शरीफ में एक संस्कृत हाई स्कूल की स्थापना की, जो भारत-पाक विभाजन तक सफलतापूर्वक चलता रहा।

सन् १६२५ ई० में प्रसिद्ध आर्य नेता श्री ठाकुरदत्त द्वारा स्थापित वैदिक भ्रातृ महाविद्यालय डेरा इस्माइलखां संस्कृत प्राध्यापक के रूप में कार्य करने लगे। महर्षि दया मिशन को गति देते हुये वहीं १६मार्च, १६२७ ई०में ४६ अल्पायु में ही उन्होंने इहलोक लीला का संवरण किया।

साहस, शक्ति व धैर्य की प्रतिमूर्ति आचार्य गोवर्द्धन ने आर्य समाज के मिशन को गति देने के लिये जो संस्था की थी, वह उनके स्वप्नों को साकार करने के लिये प्रयत्नशी अहर्निश तपोमय जीवन बिताकर आर्य जनता के जो उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह वास्तव में अनुक है।

संयोग और गुरुकुल का सौभाग्य ही कहा जाये तो अ न होगी कि उन्हीं के सुयोग्य तपः पूत सुपुत्र श्री बलभद्र हुआ इस गुरुकुल के कुलपति एवं मुख्याधिष्ठाता के रूप में दिशा निर्देशन कर रहे हैं। गुरुकुल व आर्य समाज के लिये हृदय में जो टीस है, वह छुपी नहीं है। उन्हीं के सद्प्रयास ही विद्यालय विभाग में गत चार वर्षों से वेद मंत्रों क पाठन दिनचर्या का अंग बन गया है।

पूज्यपाद आचार्य गोवर्द्धन शास्त्री की स्मृति में प्रक होने वाले ये रश्मियां निरन्तर आलोक फैलाकर चेतन दिशा प्रदान करती रहें, इसी आशा के साथ—

ईश्वर भारद्वाज शास्त्री

आश्रमाध्यक्ष

गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय, हरिद्वार

प्राक्कथन

संघड़ विद्या सभा और आर्य समाज गुरुकुल कांगड़ी विद्यालय की ओर से यह छोटी-सी भेंट आपके हाथमें है। भेंट छोटी अवश्य है लेकिन इसके पीछे एक लम्बी कहानी छिपी है। यह कहानी अथवा जो विचारधारा जो इस भेंट में व्यक्त की गई है देश के कई प्रदेशों से संबंध रखती है और कई नदियां अथवा सरोवरों के संगम की सूचक है।

कहानी का आरम्भ आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व गुजरात प्रदेश में हुआ, जहां एक बालक के मन में सत्य की खोज की जिज्ञासा और साधना उत्पन्न हुई। सत्य और ज्ञान का खोज में वो बालक इधर-उधर घूमता भटकता रहा। कभी गंगा के किनारे कभी यमुना के तट पर लेकिन साधना से पीछे नहीं हटा और फिर सन्यासी होने के साथ साथ उसने हर प्रकार के पाखण्ड और अंधविश्वास के विरूद्ध अपनी पताका फहरायी। उसके बाद वीरों की भूमि राजस्थान को उसने अपनी कर्म भूमि चुना और जगह-जगह प्रचार करता फिरा। और इसी क्षेत्र में कुछ सिरफिरे लोगों के वैर और वैमनस्य का शिकार बना अपनी जान की बलि भी दी। लेकिन इस बीच वो साधक एक सन्यासी, एक महर्षि, एक धर्म प्रचारक और युग प्रवर्तक बन चुका था। उसने खोजकर प्राचीन भारतीय सभ्यता के कुछ ऐसे तत्व आम लोगों के सामने रखे जो सीधे सरल और लोकप्रिय तो थे ही उसके साथ ही अनेक लोगों के लिए नये विश्वास और संकल्प के ज्योति दीप बनकर जलते रहे।

कहानी की दूसरी कड़ी का संबंध दिल्ली अथवा उत्तर-भारत के क्षेत्र के साथ जुड़ा है, जहां एक गृहस्थी के मन में स्वामी दयानन्द सरस्वती की शिक्षा, सरलता और सच्चाई ने दूसरा छाप छोड़ी और वह गृहस्थी आर्य समाज का एक मुख्य कार्यकर्ता और प्रचारक बनकर दयानन्द के सुझाये हुए मार्ग पर शिक्षा व्यवस्था करने के प्रयास में जुट गया। जिसके फलस्वरूप गंगा नदी के तट पर, हरिद्वार के निकट गुरूकुल कांगड़ी का नींव पड़ी। शिक्षा प्रचार के अतिरिक्त स्वामी दयानन्द ने समाज सुधार और देश की बदलती हुई परिस्थतियों में राजनैतिक मंच पर बहुत ही उपयोगी और प्रभावशाली भूमिका निभाई।

कहानी की तीसरी कड़ी सिन्धु नदी के पश्चिमी क्षेत्र से शुरू हुई जहां जिला डेरागांजीखांकी संघड़ तहसील के तोंषा शरीफ गांव में एक और बालक ने जन्म लिया। लगभग उस समय जबकि स्वामी दयानन्द सरस्वती अपनी इह लीला समाप्त कर रहे थे उस बालक के मन मे भी शिक्षा अथवा ज्ञान प्राप्त करने की लालसा थी और यद्यपि उन दिनों वो सूखा - भूखा प्रदेश पंजाब प्रान्त में काले पानी की संज्ञा रखता था, वहां से बालक गोवधन सिन्धु नदी के पार पंजाब, दिल्ली और फिर हरिद्वार के गुरुकुल कांगड़ी ग्राम में पहुँचने में सफल हुआ। और गुरुकुल परिवार में रहते हुए उन्होंने भौतिक विज्ञान और बच्चों के पालन - पोषण पर हिन्दी भाषा में सर्वप्रथम ज्ञानोपयोगी पुस्तकें भी लिखीं। बिल्कुल उसी परम्परा और शृंखला में जिसकी नींव स्वामी दयानन्द ने रखी थी तब उन्होंने सर्वप्रथम अपने वक्तव्यों और भाषणों और वेद - मन्त्रों के विश्लेषण को सत्यार्थ प्रकाश के रूप से हिन्दी भाषा में प्रस्तुत किया था।

सत्रह

समय बदला पुराने मार्ग - दर्शक, साधक, शिक्षक नहीं रहे और फिर बहुत समय बाद कुछ ऐसा संयोग हुआ कि संघड़ विद्या सभा और गुरुकुल कांगड़ी के बीच एक नयी कड़ी स्थापित हुई। संक्षेप में इस प्रकार हुआ कि स्वर्गीय श्री गोर्वधन जब गुरुकुल से अलग हुए तो उन्होंने अपने जन्म के गांव तोंषा और जिला डेरागाजीखां तथा उत्तर में सीमान्त प्रान्त के जिला इस्माइलखां को शिक्षा प्रसार केलिए चुना। उनका एक पौधा तोंषा में स्थापित संघड़ स्कूल भी था, जो सन् १९४७ तक देश के विभाजन तक चलता रहा। सन् १९२७ में उनके स्वर्गवास हो जाने के बाद इस स्कूल का प्रबन्ध वहीं के छात्रों और स्थानीय नागरिकों के कन्धों पर रहा। इस प्रकार संघड़ विद्या सभा नाम की सोसाइटी जो बाद में ट्रस्ट के रूप में चल रही है, अस्तित्व में आयी।

स्वर्गीय गोवर्द्धन के बड़े पुत्र श्री बलभद्र कुमार को यह सौभाग्य मिला है कि पंजाब और राजस्थान में सरकारी सेवा करने के बाद जब वे सेवा - निवृत हुए तो अचानक और संयोग से उनका संबन्ध गुरुकुल कांगड़ी से आन जुड़ा, जहां वे आजकल कुलपति के पद पर विराजमान हैं। वे संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट के फाउन्डर सदस्य और अध्यक्ष भी हैं। बल्कि पिछले कुछ वर्षो में अपनी आय का एक अधिक भाग उन्होंने ट्रस्ट को ही समर्पित कर दिया है जिसके फलस्वरूप ट्रस्ट अपनी सीमित गतिविधियों को विस्तार देने योग्य हुआ है।

इसी क्रम में गुरुकुल कांगड़ी से गोवर्द्धन ज्योति के नाम से हर वर्ष एक - एक सौ वेद - मन्त्रों के संकलन हिन्दी में भाषानुवाद के साथ नियमित रूप से प्रकाशित किये जा रहें हैं। जिस

प्रयास में संघड़ विद्या सभा और गुरुकुल कांगड़ी तथा गुरुकुल के शिक्षा प्रेमियों और अध्यापकों का सहयोग उपलब्ध है।

चूंकि सन् १९८३-८४ महर्षि दयानन्द के निर्वाण की शताब्दी वर्ष के रूप में मनाया जा रहा है, श्री बलभद्र कुमार की प्रेरणा से संघड़ विद्या सभा ने यह उचित समझा कि कुछ महत्व-पूर्ण बिन्दुओं पर, जो आज भारत के लिए भी काफी महत्व रखते हैं और सामयिक हैं, महर्षि दयानन्द के विचारों का संकलन छोटा और आसानी से उपलब्ध पुस्तकों के रूप में किया जाय। बल्कि सत्यार्थ प्रकाश पर आधारित महर्षि दयानन्द के विचारों का चयन और संकलन भी उन्हीं ने किया है। जिन्हें गोवर्धन-ज्योति की विभिन्न के रश्मियों के रूप में पाठकों के सामने रखते हुए संघड़ विद्या सभा को हर्ष और गौरव का अनुभव हो रहा है। यह स्वाभाविक भी है क्योंकि जिस कहानी का आरम्भ आज से लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व अधंकार और अविश्वास या अंधविश्वास में डूबे भारत के दक्षिणी-पश्चिमी तट के पास एक छोटे से गांव से शुरू हुआ था नो कहानी अनेक मंजिलें पार करते हुए आज हमारे सामने एक दूसरे रूप में एक छोटे से दीपक की ज्योति के रूप में प्रस्तुत है।

इस कार्य में आर्य समाज व गुरुकुल विद्यालय की ओर से जो भी सहयोग मिला है उसके लिए संघड़ विद्या सभा ट्रस्ट के सभी सदस्य उनके प्रति अनुगृहीत हैं।

११, उनियारा बाग
जयपुर

भूपेन्द्र हूजा

दो शब्द

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति श्री बलभद्र कुमार हूजा एवं गुरुकुल राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज के प्राचार्य-अधीक्षक श्री सुरेश चन्द्र शास्त्री की प्रेरणा से अक्टूबर ८० में प्रातःकालीन संध्या-हवन के पश्चात् विद्यालयीय छात्रों को प्रतिदिन एक सुभाषित / वेदमन्त्र याद कराने का कार्य प्रारम्भ किया गया था। मार्च / अप्रैल ८१ में ये सुभाषित 'जीवन-ज्योति' नामक लघु पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हुये थे। महर्षि दयानन्द द्वारा प्रवर्तित आर्य-समाज के तृतीय सिद्धान्त को क्रियान्वित करते हुये सन् ८२ व ८३ में इन छात्रों को प्रतिवर्ष एक-एक सौ वेदमन्त्र याद कराये गये थे जो 'गोवर्द्धन-ज्योति' प्रथम व द्वितीय रश्मि के नाम से क्रमशः प्रकाशित हुये। इसी शृंखला में स्मरण कराये गये वैदिक मन्त्रों का एतद्वर्षीय संकलन आपकी सेवा में प्रस्तुत है। चूंकि यह छात्र अपनी आयु, बौद्धिक स्तर एवं योग्यता के आधार पर वैदिक भाषा, तत्रत्य प्रतीकात्मक शैली को समझने में कठिनाई अनुभव करते अतएव इन मन्त्रों का समुचित अर्थ देने के पश्चात् सारांश रूप में उसे लौकिक जीवन एवं संस्कृति से जोड़कर इन छोटे बच्चों के लिये बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया गया है जिससे वे भविष्य में अपने जीवन को तदनुसार ढालकर वैदिक संस्कृति को जीवित रख सकें तथा सुखी रहें। इन छात्रों के उत्साह एव प्रतिभा को देखकर यह अनुभव किया गया कि यदि वेदमंत्रों की शिक्षा देने वाले हम तथा सक्षम अधिकारी वर्ग वैदिक आदर्शों को जीवन में अपना कर कोई मानदण्ड उपस्थित करें तो यह छात्र संसार में बहुत बड़ा काम कर सकते हैं और आर्य समाज के उद्घोष 'वेद की ज्योति जलती रहे' को चरितार्थ

कर सकते हैं वर्ना 'पढ़ने को तो सब खासो अ म पढ़ते हैं, हजारे होते भी कलमा कलाम रटते हैं' और इस प्रकार हमारा वेद मंत्रो का याद करना कराना प खण्ड मात्र रह जायेगा ।

इन मंत्रों को याद कराते समय दयानन्द वैदिक संस्थान नई दिल्ली से प्रकाशित चारों वेदों, अत्यन्त उच्चस्तरीय आर्य विद्वान् पं.दामोदर सातवलेकर अभयदेवजी विद्यालंकार,डॉ.हरिदत्त शास्त्री द्वारा रचित ग्रन्थों,यजुर्वेद भाष्य आदि से सहायता ली गई है,संकलन कर्त्ता तदर्थ हार्दिक आभार व्यक्त करता है ।

श्री ईश्वर भारद्वाज जी आश्रमाध्यक्ष ने प्रूफ आदि देखने व पुस्तक छपवाने में सक्रिय सहयोग दिया है । श्री भारद्वाज जी तदर्थ धन्यवाद के पात्र हैं वैसे भी श्री भारद्वाज जी व हाकिम सिंह जी समय-समय पर हमेशा सहयोग करते रहे हैं, तदर्थ उनके प्रति आभार व्यक्त करना परमावश्यक है । संचड़ विद्या सभा ट्रस्ट जयपुर ने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ एक सहस्त्र रुपये की सहायता प्रदान की है । 'शक्ति प्रेस' कनखल के संस्थापक स्व. ठाकुर संसार सिंह जी के पौत्र श्री यशवर्धन व उनके अन्य सहयोगियों ने इस पुस्तक को बहुत ही अल्प समय में मुद्रित कर जो कृपा की है, संकलन कर्त्ता इन सब को हार्दिक सधन्यवाद देता है

चन्द्रशेखर त्रिवेदी
मनोविज्ञान–विभाग
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वा

ओ३म्

गोवर्द्धन-ज्योति

[षष्ठ रश्मि]

(हिन्दी अनुवाद सहित चुने हुए वेद मन्त्र)

ओ३म् भूर्भुवःस्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

यजु० ३६-३ ॥

अर्थः -- जो सब का रक्षक, समस्त जगत का प्राण, सभी दुःखों को दूर करने वाला, सब सुखों का दाता परमेश्वर है, वह सर्वव्यापक एवं सब को उत्पन्न करने वाला है। सर्वश्रेष्ठ एवं ग्रहण करने योग्य शुद्ध स्वरूप दिव्य गुणों से युक्त देव का हम ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को सन्मार्ग में चलाने के लिये प्रेरित करे।



(१)

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥

यजु० ४०-१ ॥

अर्थः— सम्पूर्ण चराचर विश्व में परमेश्वर का निवा
है। अर्थात् वह सर्वव्यापक सृष्टिकर्ता प्रभु घट-घट व्यापी है
उसने जो तुम्हें प्रदान किया है, उसका त्यागपूर्वक उपभोग करो।
दूसरे के धन पर ललचाई दृष्टि मत डालो अर्थात् प्रभु द्वारा प्रद
सामग्री में ही संतोष करो।

सारांश है कि प्रभु की इच्छा में ही प्रसन्न रहो— "राजं
हूँ मैं उसी में, जिसमें तेरी रजा है।"



(२)

अग्निं सूनुँ सनश्रुतं सहसो जातवेदसम् ।

वह्निं देवा अकृण्वत ।

ऋ० ३-१-११ ।

अर्थः— विद्वानों को चाहिये कि अपने पुत्रों के समान अन्य
लोगों को समझते हुये विद्यादान करें और वेद आदि की सत्य
विद्याओं को पढ़ावें। इस प्रकार लोक एवं परलोक दोनों में मानव
जीवन सफल रहेगा।



(३)

ः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां

शरद्यन्वविन्दत् ।

ोजायमानं यो अहिं जघान दानुं

शयानं स जनास इन्द्रः ॥

ऋ० २-१२-११ ॥

अर्थः— हे मनुष्यों ! जिस इन्द्र ने पर्वत-गुफाओं में रहने ाले शम्बर नामक दैत्य को ढूंढ लिया, पराक्रम से युद्ध करते ये प्रहार करने वाले, पर्वतों के झरनों के अथवा वर्षा के जल को ोककर लेटे हुए उस असुर को मार डाला, वह इन्द्र है, मैं नहीं।

सारांश यह है कि इन्द्र व्यवस्था एवं सत्य, न्याय को थापित करने वाला है, उसकी स्तुति करनी योग्य है।



(४)

ात्रि मातरुषसे नः परिदेहि ।

उषा नो अह्ने परिददातु । अहस्तुभ्यं विभावरि ॥

अथर्व० १६-४५-२ ॥

अर्थः – हे माता रात्रि ! तुम मुझे सुरक्षित देवी ऊषा हाथों में सौंप दो। उसी प्रकार देवी ऊषा मुझे दिन को सौंपे और दिन मुझे पुनः प्रभातप्राया माता रात्रि को प्रदान करे। परमेश्वर ! इस प्रकार रात दिन (प्रतिक्षण) मैं सुरक्षित रहूँ।



(५)

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः

वेदा य उपजायते

ऋ० १-६-२५

अर्थः— जो मनुष्य सत्य, धर्म व विद्या एवं बल धारण करने वाला होता हुआ बारह मास एवं उनसे उत्पन्न वाले (अधिक मास) को जानता है वह काल के रहस्य को जानता है और एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता है।



(६)

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु न कवे।

अद्या कृणु हि वीतये

ऋ० १-१-१३

अर्थः— जब अग्नि में सुगन्धि आदि पदार्थों का हवन होता है, तभी वह यज्ञ वायु आदि पदार्थों को शुद्ध करता है। शरीर एवं औषध आदि पदार्थों की रक्षा करता है।इस प्रकार इन शुद्ध पदार्थों के भोग से प्राणियों के विद्या, ज्ञान एवं बल की वृद्धि होती है। अतएव सभी मनुष्यों को यज्ञ-यागादि करना चाहिए।



(७)

सखाय आ निषीदत सविता स्तोभ्यो नु नः ।

दाता राधांसि शुम्भति ॥

ऋ० १-२-२२ ॥

अर्थः— सभी मनुष्य परस्पर मित्र भाव से रहें एवं समस्त ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाले सूर्य देव की प्रशंसा करें अर्थात गुणगान करें।

सारांश यह है कि हम सभो को परस्पर मित्रवत् व्यवहार करना चाहिए और सभी रसों के उत्पादक सूर्य की उपासना करनी चाहिए। ऐसा करने से ही मनुष्य सुखी रह सकता है।



(८)

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।
य०—४०-१२ ।

अर्थः— जो व्यक्ति अविद्या (अज्ञान) के उपासक हैं, गहन अज्ञानान्धकार में डूब जाते हैं। किन्तु जो विद्या (केव ज्ञान) में रत हैं वे भी प्रभु को न जानने के कारण अन्धकार गर्त में गिर जाते हैं।

सारांश यह है कि व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त करने के प्रभु को जानने का प्रयत्न करना चाहिए, तभी उसका ज्ञ सार्थक होगा।



(९)

असुर्याः नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यभिगच्छन्ति ये के चात्मह्नो जनाः ।
य०—४०-३

अर्थः तामसिक वृत्तियों वाले व्यक्ति अन्धकारमय लो में वास करते हैं, असुर (अज्ञान) लोक में वास करते हैं। अ आत्मा के विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति भी मरकर अथ जीवितावस्था में उन्हीं लोकों में जाते हैं।

सारांश यह है कि व्यक्ति जब गलतकार्य करता है तो आत्मा रोकता है। आत्मा के मना करने पर भी जो कार्य करते हैं, वे अज्ञानी हैं, पापी हैं और यातना भोगते हैं।



(१०)

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तदु अन्तिके ।

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

यजु० ४०-५ ॥

अर्थः— वह सम्पूर्ण जगत का स्वामी क्रियाशील है किन्तु क्रिया रहित भी है। वह दूर है और पास भी है। वह समस्त जगत के अन्दर है और वही बाहर भी है।

सारांश यह है कि वह प्रभु निष्क्रिय होकर भी सृष्टिकर्ता होने से गतिमान है। अज्ञानियों से दूर है किन्तु विद्वानों के पास है। सबके अन्तस् में विद्यमान और सम्पूर्ण जगत् के बाहर अर्थात् सर्वत्र व्याप्त है। अर्थात् वह पूर्णपुरुष सर्वशक्तिमान् है।



(११)

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम् ।
ओं क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतोस्मर कृतं स्मर ।।

य० ४०-१५ ।।

अर्थः—हे कर्म के कर्ता जीव ! यह प्राण और वायु तत्त्व तथा आत्मा एक दूसरे के आश्रित हैं व यह भौतिक शरीर केवल भस्म होने के लिए है । अतः ओ३म् (परमेश्वर का सर्वोत्तम नाम) का स्मरण कर । अपने किए गए कर्मों का स्मरण कर ।

सारांश यह है कि इस नश्वर शरीर के लिए दुष्ट कर्म मत कर । आत्मा सत्य और नित्य है, उसी की प्रेरणा से कार्य कर जिससे दुष्कर्मों से बच सके ।



(१२)

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः ।

ऋतजाता अरेपसः ।

ऋ० ५-५-६१ ।

अर्थः— हे मनुष्यो ! जो प्रमाद से रहित तथा परमेश्वर के भक्त होते हैं वे ही सत्य, असत्य, अपराध व अनपराध में अन्तर करते हुये व्यवहार करते हैं । अर्थात् सत्य एवं न्याय की स्थापना करते हुए असत्य एवं अन्याय का उन्मूलन करते हैं ।



(१३)

ता हि श्रेष्ठ वर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।

ता सत्पती ऋतावृध ऋतावाना जने जने ॥

ऋ० ५-५-६५ ॥

अर्थः— जो मनुष्य बहुश्रुत, पूर्ण विद्यावाले सत्य धर्म में निष्ठा रखने वाले होते हैं और विद्या प्राप्ति में प्रवृत्ति रखते हैं वस्तुतः ऐसे ही जन शिक्षक होने के योग्य हैं, इतर नहीं ।

सारांश यह है कि शिक्षक को अपने विषय का पण्डित तथा निरन्तर स्वाध्यायशील होना चाहिये ।



(१४)

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विप्रा गिरा ।

महिक्षत्रावृतं वृहत् ॥

ऋ० ५-५-६८ ॥

अर्थः— जो शिक्षक अथवा उपदेशक जन अपनी पवित्र शिक्षा अथवा उपदेश से लोगों को उत्तम आचरण वाले बनाते हैं, वे धन्य हैं ।



(१५)

दश ते कलशानां हिरण्यानामधीमहि ।

भूरिदा असि वृत्रहन् ॥

ऋ० ४-३-३२ ॥

हे इन्द्र ! आप शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, अत्यधिक दान देने वाले हैं। हम लोग आपके सुवर्ण निर्मित बहुत से घटों को प्राप्त हों।

सारांश यह है कि मनुष्य को उदार एवं दानशील होना चाहिये। जो अत्यधिक उदार एवं दान देने वाला होता है उसके तमाम मित्र होते हैं। बहुत ही ठीक कहा गया है :—

दानेन भूतानि वशीभवन्ति

दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम् ।

परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै

र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति ॥



(१६)

योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे ।

सखाय इन्द्रमूतये ॥

ऋ० १-६-३० ॥

अर्थः— हम लोग परस्पर मित्र होकर अपने अभ्युदय के लिये अथवा रक्षा के लिये प्रत्येक युद्ध में और दुष्प्राप्य प्रत्येक पदाथ में सब पर विजयश्री देने वाले तथा दुष्टों का नाश करने वाले परमात्मा का आह्वान करें। साथ ही विद्या एवं पुरुषार्थ भी तदर्थ करें।



(१७)

अस्मे वत्सं परि षन्तं न विन्दन्निच्छन्तो

विश्वे अमृता अमूराः ।

श्रमयुवः पदव्यो धियन्धास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥

ऋ० १-५-७२ ॥

अर्थः ईश्वर मनुष्यों को आदेश देता है कि हे मनुष्यो ! तुम लोग वेदों को पढ़ो और पढ़ाओ। इस प्रकार अज्ञान से ज्ञान की ओर उन्मुख होवो, तभी सुख प्राप्त होगा। क्योंकि वेदार्थ ज्ञान के के बिना कोई भी मनुष्य सत्यविद्या को नहीं प्राप्त कर सकता।

अतः सारांश यह है कि सभी आर्य जनों को वेद-विद्या का निरन्तर प्रचार–प्रसार करना चाहिए।



(१८)

ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे। ह्वयामि रात्रिं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितार-मूतये ॥

ऋ० १-७-३५ ॥

अर्थः— उत्तम सुखों की प्राप्त्यर्थ मैं शरीर धारण के आदि साधन अग्नि का आह्वान करता हूँ। रक्षणादि के लिए मित्रावरुण (प्राण व उदान वायु को) प्राप्त करता हू। संसार को निद्रा में निवेशित करने वाली रात्रि का आह्वान करता हूँ। अपनी क्रिया सिद्धि की इच्छा करते हुए द्योतनात्मक सूर्य देव का आह्वान करता हूँ क्योंकि इनके बिना कभी किसी को सुख नहीं प्राप्त हो सकता।



(१९)

रयि र्न यः पितृवित्तो वयोधाः
सुप्रणीतिश्चिकितुषो न शासुः ।
स्योनशीरतिथिर्न प्रीणानो
होतेव सद्म विधतो वि तारीत् ॥

ऋ १-१२-७३ ॥

अर्थः – विद्या धर्मानुष्ठान, विद्वानों का सङ्ग एवं उत्तम विचारों के बिना किसी मनुष्य को विद्या तथा सुशिक्षा का साक्षात्कार नहीं होता। निरन्तर भ्रमण करने वाले अतिथि एवं विद्वानों के सदुपदेश, सुशिक्षा के बिना कोई मनुष्य सन्देह रहित नहीं होता। अतएव सभी मनुष्यों को चाहिए कि ऐसे शिक्षक, उपदेशक अतिथि का आदर करें और उनके प्रति बहुत अच्छा व्यवहार करें।



(२०)

असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।
न स देवा अतिक्रमे तं मर्त्तासो न पश्यथ–
वित्तं मे अस्य रोदसी ॥

ऋ० १-७-२३ ॥

अर्थः—जो वेदोक्त मार्ग है वही सत्य है ऐसा समझ कर सभी मनुष्य समस्त सत्य विद्याओं को प्राप्त होकर आनन्दित हों। यह वेदोक्त मार्ग खण्डन करने योग्य नहीं है, इसे विद्या के बिना जाना नहीं जा सकता।



(२१)

प्राप्ता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान्
प्रतिगृह्या नि धत्ते ।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः ॥
ऋ० १-१८-१२५ ॥

अर्थः— जो मनुष्य आलस्य का परित्याग करके धार्मिक रीति से धनोपार्जन करके उसकी रक्षा, उसका स्वयं भोग करके एवं दूसरों को दान देकर उन्हें भी भोग कराता है, वह सब प्रकार से सुखी रहता है तथा कल्याण का पात्र होता है।

सारांश यह है कि यदि मनुष्य के पास धन हो तो उसे दान में लगावे, स्वयं उसका उपभोग करें अन्यथा उसका नाश अवश्यम्भावी है। क्योंकि धन की तीन गतियां–दान, भोग व नाश हैं।



(२२)

ददानमिन्न ददभन्त मन्मार्ग्निवरूथं मम तस्य चाकन् ।
जुषन्त विश्वान्यस्य कर्मोपस्तुतिं भरमाणस्य कारोः ॥
ऋ० १-२१-१४८ ॥

अर्थः— हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जिसको विद्या देते हैं, वे उनकी निरन्तर सेवा करें। कभी भी ऐसे परोपकारी विद्वानों का अनादर नहीं करना चाहिए। सभी लोग वेद का अभ्यास करें अर्थात् पढ़ें और पढ़ावें।



(२३)

शुचिः पावको अद्भुतो मध्वा यज्ञं मिमिक्षति ।
नराशंसस्त्रिरा दिवो देवो देवेषु यज्ञियः ॥

ऋ० २-२-१४२ ॥

अर्थः— जो मनुष्य त्रिकाल पवित्र यज्ञ करने की इच्छा करते हैं, वह सर्वथा सुख भोगते हैं। सारांश यह है कि जो मनुष्य बाल्यावस्था, युवावस्था एवं वृद्धावस्था में विद्या पढ़ते हैं और उसका प्रचार-प्रसार करते हैं वे कायिक, वाचिक एवं मानसिक रूप में सुखी रहते हैं।



(२४)

असुन्वन्तं समं जहि दूणाशं यो न ते मयः ।
अस्मभ्यमस्य वेदनं दद्धि सूरिश्चिदोहते ॥

ऋ० २-४-१७६ ॥

अर्थः— राजा (अधिकारी) का कर्त्तव्य है कि जो आलसी पुरुष हों, उन्हें दण्डित करे। जिस प्रकार विद्वज्जन अपने अमूल्य उपदेशों व पावन ज्ञान से दूसरों को तद्वत् बनाकर सुख पहुँचाते हैं उसी प्रकार राजा भी यथासामर्थ्य आलसी एवं निष्क्रिय जनों को दण्ड देकर समाज को सुखी करे।



(२५)

होता जनिष्ट चेतनः पिता पितृभ्य ऊतये।
प्रयक्षञ्जेन्यं वसु शकेम वाजिनं यमम् ॥

ऋ० २-१-५ ॥

अर्थः— जिस प्रकार परब्रह्म परमात्मा संसार में सबकी रक्षा के लिए अनेक प्रकार से धन-धान्य उत्पन्न करता है, वैसे ही साधु पुरुष सब के सुख का ध्यान रखते हुए आचरण करते हैं



(२६)

स्वादो पितो मधोपितो वयं त्वा ववृमहे
अस्माकमविता भव ॥

ऋ० २-५-६ ॥

अर्थः— मधुर स्वादिष्ट, सात्विक अन्न से शास्त्रोक्त
ति से व्यञ्जन बनाकर भोजन करना चाहिए जिससे शरीर
वस्थ एवं निरामय रहे और दीर्घ आयु प्राप्त हो। 'अन्नानुरुपां
नरूप ऋद्धिं' कहा गया है।

सारांश यह है कि शरीर की रक्षा सर्वथा करणीय है
सके बिना मनुष्य कोई भी धर्म-कर्म नहीं कर सकता। कुमार
भव में कालिदास ने कहा है :—

शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्।



(२७)

ः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं
यः शसन्त यः शशमानमूती।
स्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो
यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥
ऋ० २-१२-१४॥

अर्थः— जो सबको सुख पहुँचाने वाले पुरुष की रक्षा
रता है। जो दूसरों की प्रशंसा करने वाले तथा अधर्म न करने
ाले व्यक्ति का सर्वथा कल्याण करता है, जिसका ब्रह्म वृद्धि रूप
(सर्वत्र व्याप्त है), चन्द्रमा जिसका धन है। ऐसा वह सर्वथा
म्पन्न ऐश्वर्यवान् इन्द्र है, मैं इन्द्र नहीं हूँ।



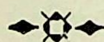
(२८)

न तमंहो न दुरितं कुतश्चन नारातयस्तितिरु
र्न द्वयाविनः

विश्वा इदस्माद्ध्वरसो वि बाधसे यं सुगोपा
रक्षसि ब्रह्मणस्पते

ऋ० २-२-२३

अर्थः—जो लोग परमेश्वर की आज्ञा का पालन क
हैं। आप्त पुरुषों का सङ्ग करते हैं तथा अपनी आत्मा की पु
के अनुसार पवित्र आचरण करते हैं वे सर्वदा पापाचरण से पृ
रहते हैं और निरन्तर सुख का भोग करने हैं। अतएव मनुष्यों
चाहिए कि परमेश्वर को कभी न भूलें। सत्सङ्गति करें
आत्मा के विरुद्ध कभी आचरण न करें।



(२९)

नमः पुरा ते वरुणोत नूनमुतापरं तु विजात ब्रवाम।
त्वे हि कं पर्वते न श्रितान्यप्रच्युतानि दूडभ व्रतानि

ऋ० २-३-२८

अर्थः— श्रेष्ठ व विद्वान लोगों को सदैव आदर की
से देखो। उनके प्रति प्रिय वचन कहो एवं अनुकूल आचरण क
उनके गुण, कर्म व स्वभाव को यथासामर्थ्य अपने में ग्रहण क

(३०)

अवक्रन्द दक्षिणतो गृहाणां

सुमङ्गलो भद्रवादी शकुन्ते ।

मा नः स्तेन ईशत माघशंसो

बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥

ऋ० २-४-४२-३ ॥

अर्थः— पवित्र आचरण करने वाले सत्यनिष्ठ एवं कर्त्तव्यपरायण महापुरुष जहां उपदेश करते हैं, वहां चोर, डाकू एवं आततायी जन नष्ट हो जाते हैं और सभी लोग सुखी रहते हैं। मालविकाग्निमित्र में कालिदास ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुए कहा है :—

हिंस्र स्वपापेन विहिंसितस्सदा

साधुः समत्वेन भयाद् विमुच्यते ।



(३१)

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः

पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।

सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भि

र्जगतः स्थात र्जगदा कृणुध्वम् ॥

ऋ० ६-४-४६ ॥

अर्थः— जो मनुष्य पवन के समान संसार का हित क
वाले एवं सत्य को सुनने वाले हैं, वे ही जगत् को जानकर दू
लोगों को भी उसका वास्तविक ज्ञान करा सकते हैं।

सारांश यह है कि हित करने में ऊंच-नीच, अपना-परा
शत्रु-मित्र आदि की कोई विभेदक दृष्टि नहीं रखनी चाहिये। सा
ही सत्य का श्रवण करना चाहिये व उद्वेलित नहीं होना चाहिये
साधारण व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता क्योंकिः—

'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'



(३२)

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं
धात तोकाय तनयाय शं योः।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा
विश्वस्य स्थातु जंगतो जनित्रीः॥

अथः— हे विद्वज्जनो ! तुम अपवित्र जन को सत्य ग्रह
कराकर शुद्ध करो एवं सारे संसार की रक्षा करने वाले, संसा
में व्याप्त अविद्यारूपी रोग का निवारण करते हुए सभी का मा
के समान पालन करो।



(३३)

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम ।
येन विश्वा परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ॥
ऋ० ४-८ - १३ ॥

अर्थः— राजा (अधिकारी आदि) का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे राजमार्गों का निर्माण करावें, ऐसी व्यवस्था करें, जिससे सर्व साधारण को चोर एवं डाकुओं से भय न हो तथा कुछ लाभ भी हो। अर्थात् उनके दोनों ओर छाया देने वाले फल दार वृक्ष आदि भी लगवावें। यत्र-तत्र लोगों के ठहरने के लिए शालाओं का निर्माण करावे। इस प्रकार प्रार्थना की गई है कि हमारा मार्ग सुगम हो, हम सुख से उस पर चल सकें।



(३४)

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभि र्हवनश्रुतः ।
जुषन्तां युज्यं पयः ॥
ऋ० ६-५-५२ ॥

अर्थः— अध्ययनरत एवं परीक्षार्थी छात्र को चाहिये कि वह मद वर्धक तथा बुद्धि को कुत्सित एवं क्षीण करने वाले पदार्थों का सेवन न करें प्रत्युत् यथासामर्थ्य बुद्धि - वर्धक दुग्ध, फल, सात्विक व उत्तम आहार किया करें।



(३५)

कविं शशासुः कवयोऽदब्धा निधारयन्तो दुर्य्यास्वायोः ।
अतस्त्वं दृश्यां अग्न एतान् पड्भिः पश्येरद्भुतां अर्य एवैः

अर्थः— विद्वान् शिक्षक, किसी अधिकारी, बुद्धिमान् ए विनम्र शिष्य को प्रेम पूर्वक शिक्षा देते हैं और उसके अवगुणों क दूर कर गुणी एव सदाचारी बनाते हैं वे विद्वज्जन सर्वदा प्रशंस नीय आचरण करने वाले हैं उनका आदर करो ।



(३६)

मा कस्य यक्षं सदमिद्धुरो गा

मा वेशस्य प्रमिनतो मापेः ।

मा भ्रातुरग्ने अनृजो ऋणं

वेर्मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम ॥

ऋ० ४-१-३ ॥

अर्थः – जो अन्याय से किसी की वस्तु नहीं लेते, दुष्ट ए हिंसक प्रवृत्ति वाले व्यक्ति का संग नहीं करते, न्याय तथा धार्मि रीति से अर्जित धन का दुरुपयोग नहीं करते और शत्रु का विश्वा नहीं करते, वे सदैव सुखी व आनन्दित रहते हैं ।



(३७)

न यस्य सातुर्जनितोरवारि न मातरापितरा नू चिदिष्टौ।

अधा मित्रो न सुधितः पावकोऽग्नि र्दीदाय

मानुषीषु विक्षु ॥

ऋ० ४-१-६ ॥

अर्थ— जिस पुत्र के होते हुए माता व पिता को दुःख होता है, तथा उनका यथोचित सम्मान नहीं होता, वह भाग्यहीन अपने जीवन में निरन्तर पीड़ित रहता है और जिस पुत्र की सेवा से माता–पिता प्रसन्न रहते हैं, वह प्रसन्न व सुखी होता है।

वस्तुतः माता–पिता से व्यक्ति जीवन में कभी उऋण नहीं हो सकता। मनुस्मृति में कहा गया है :—

यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणाम्।

न तस्यनिष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्ष शतैरपि ॥



(३८)

अयं पन्था अनुवित्तःपुराणो यतो देवा उदजायन्त विश्वे।

अतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः ॥

ऋ० ४-२-१८ ॥

अर्थ— हे मनुष्यो ! जिस मार्ग से यथार्थवक्ता पुरुष ग हों, उसी से तुम भी चलो क्योंकि वही आदि काल से सिद्ध मा है, उसका अगनुमन करने से ही संसार का कल्याण हो सकता है किसी को माता पिता व आचार्य का अपमान नहीं कर चाहिए । उचित ही कहा गया है :—

'महाजनो येन गतः स पन्थाः ।



(३६)

ये अग्नै नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्य व्रतस्य सश्चिरे ॥

ऋ० ५-२-२० ॥

अर्थः— जो लोग सर्वदा सत्य बोलते हैं, सबका उपकार करके आत्मवत् सभी को सुख पहुँचाते हैं एवं कभी भी धर्म के विरूद्ध आचरण नहीं करते, वस्तुतः ऐसे ही व्यक्ति वृद्ध कहे जा सकते हैं । अतः वृद्धत्व का मापदण्ड आयु नहीं है ' कुमार सम्भव में कालिदास ने इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हुये कहा है :—

'न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते'



(४०)

अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षिणम् ।

स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥

ऋ॰ ५-१४-१ अनु॰ ॥

अर्थः— जिस प्रकार घृत एवं समिधा से अग्नि वृद्धि को ाप्त होता है उसी प्रकार सत्सङ्गति से मनुष्य में ज्ञान-विज्ञान ढ़ता है। अतः प्रत्येक मनुष्य को सतसगंति करनी चाहिये क्योंकि

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते

कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम् ॥

लक्ष्मीं तनोति वितनोति च दिक्षु कीर्ति

सत्सगंतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥



(४१)

व सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता

जानती गात ।

न्वर्णसो नद्यः खादो अर्णाः स्थूणेव

सुमिता दृंहत द्यौः ॥

ऋ॰ ५-४-४५ ॥

अर्थः— जो सूर्य के सदृश विद्या, माता के सदृश कृपा, नदी की तरह उपकार और खम्भ के समान धारण करते हैं वे ही व्यक्ति सर्वथा समृद्धि को प्राप्त होते हैं।

साराँश यह कि ज्ञान देने में ऊंच-नीच का कोई भेद नहीं करना चाहिये। सभी के प्रति मातृवत् दया व प्रेम भाव रखना चाहिये। नदी के जल के समान यथा शक्ति सबके काम आना चाहिये। तथा खम्भ सदृश एक बार स्वीकार की गई जिम्मेदारी का सर्वदा निर्वाह करना चाहिये। उचित ही कहा गया है :—

'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति'



(४२)

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा विचक्रमे रजसस्पात्यन्तौ
ऋ० ५-३-४७

अर्थः— किसी भी घटना, अथवा कार्य के कारण को जानकर उचित कदम उठाना चाहिये अन्यथा उसका बुरा परिणाम होता है, जिस प्रकार रोग के कारण को बिना जाने उसकी निवृत्ति नहीं हो सकती। कार्यकारण सम्बन्ध अपरिहार्य है। कालिदास ने लिखा है :—



उदेतिपूर्वं कुसुमं ततः फलं
घनोदयः प्राक् तदनन्तरं पयः ।
निमित्तनैमित्तिकयोरयं क्रमः
तव प्रसादस्य पुरस्तु संपदः ॥



(४३)

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥

अर्थः— हे मनुष्यो ! यदि तुम समर्थ हो, उन्नत अवस्था को प्राप्त हो, तो तुम्हारा कर्त्तव्य है कि निर्बल एवं अशक्त लोगों की सर्वथा रक्षा करो क्योंकि :—

'मनुष्य है वही कि जो, मनुष्य के लिये मरै'



(४४)

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्त्तो वधाय दाशति ।
तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥
ऋ० ६-२-१६ ॥

अर्थः— हे परमात्मन् ! जो मनुष्य हम लोगों को मारने के लिये (क्लेश पहुँचाने के लिये) बिनापराध दोषी ठहराने का प्रयत्न पूर्वक षड्यन्त्र रचता है, प्रयास करता है उस नराधम को दण्डित करें तथा उससे हमारी रक्षा करें ।



(४५)

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।

नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥

ऋ० ६-४-४५ ॥

अर्थः— जो राजा (अधिकारी) राजधर्मानुसार पुत्रवत् प्रजा (अधीनस्थ लोगों का पालन करता है अर्थात् उनके हित का संरक्षण करता है, वह अक्षुण्ण कीर्ति का पात्र होता है ।

अतएव अधिकार मिलने पर उनका दुरुपयोग मत करो प्रत्युत् विनम्र भाव से अपने कर्त्तव्यों का पालन करो ।



(४६)

यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः ।

तत्सु नो मन्म साधय ।

ऋ० ६-५-५६ ।

अर्थः – मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य है कि प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी भी स्थिति में असत्य भाषण न करे । सर्वदा सत्य बोले ताकि सत्य की रक्षा हो और सत्य ज्ञान, विद्या का प्रचार हो । अतएव यथा सम्भव 'सत्यं वद धर्मं चर' आदि वेद के आदेश का पालन करना चाहिये और किसी भी प्रकार के निर्णय का सत्य व सही आधार लेना चाहिये किसी को प्रसन्न करने के लिये अनृत का सहारा लेकर काम करना पाप है ।



(४७)

आ यो योनि देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्नि
रमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च
विश्वधायसं बिभर्ति ॥
ऋ० ७-४ ॥

अर्थः जैसे समिधा एवं हवन करने योग्य पदार्थों से अग्नि वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे जो लोग ज्ञानार्जन व विद्याध्ययन करते हुये आचार्य को प्रसन्न करते हुए व्यवहार करते हैं वे औषधियों के समान अविद्या रूप रोग के निवारक, सूर्य के सदृश धर्म के प्रकाशक और पृथिवी के समान सबके धारक होते हैं ।



(४८)

उत द्वा उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ
उशत आ वहेह ॥
ऋ० ७-१७ ॥

अर्थः— जो छात्र विद्या प्राप्ति की कामना से पूजनी
गुरुजनों से विद्याध्ययन करते हुए, उनकी सेवा करते हैं और
जनों का स्नेह व कृपा जिन विद्यार्थियों को प्राप्त होती है, वे अ
जीवन में सर्वथा समृद्धि को प्राप्त होते हैं।



(४६)

ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो
रत्ना वि दध इयानः ।
ऋ० ७-१७

अर्थः— जो गुरुजन सात्विक भाव से प्रेम पूर्वक छात्रों
शिक्षा दें, उन्हें छात्र जन भी मनसा, वाचा, कर्मणा सेवा कर
धन देकर सन्तुष्ट करें तभी तो ऋषि कुमार कौत्स अपने
महाराज वर्तन्तु को दक्षिणा देने के लिये धन प्राप्ति काम
महाराजाधिराज रघु के दरबार में जाते हैं :–

समाप्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वर्तन्तु शि



(५०)

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥
ऋ० ७-२२ ॥

अर्थः— निरन्तर आलसी, प्रमादी, निर्बुद्धि एवं दुराचारी जन को विद्वज्जन उपदेश न करें क्योंकि वह उपदेश, विद्या फलवती नहीं होती। जो व्यक्ति परिश्रमी, सदाचारी बुद्धिमान् एवं उत्तम आचरण करने वाला हो, उसे सर्वथा उत्साहित करना चाहिये।



(५१)

न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥
ऋ० ७-३२ ॥

अर्थः - दुष्ट, हिंसक, दुराचारी एवं आलसी व्यक्ति को धन, राज्य, लक्ष्मी एवं उत्तम सामर्थ्य नहीं प्राप्त होता।

अतएव सत्य, न्यायपूर्ण, एवं धार्मिक रीति से ही धनार्जन करना श्रेयस्कर है। अशुभ साधनों से प्राप्त समृद्धि न स्थायी होती है और न उत्तम फलदायिनी होती है।

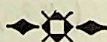


(५२)

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरुवसुर्हि मघवन्सनादसि भरे भरे च हव्यः ॥

ऋ० ७-२४ ॥

अर्थः— हे मनुष्यों ! अणु से अणु (सूक्ष्म से सूक्ष्म) बड़े बड़ा, सर्वाधार सर्वव्यापक परमात्मा की ही उपासना करने योग्य है । अतः सभी मनुष्य उसी का आश्रय लेकर व्यवहार करें वह परमात्मा 'अणोरणीयान् महतो महीयान्' होता हुआ इ समस्त संसार का नियन्ता है । अतः जो कुछ करो उसके प्र समर्पण भाव रखते हुये करो, उससे डरते हुए करो जिससे को अनुचित कार्य तुम से न हो । ठीक ही कहा है 'One must b brave towards man and Coward towards God.'



(५३)

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा
यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥ ऋ० ७-५६ ॥

अर्थ— जो लोग सभी के प्रति प्रिय व्यवहार करते और सबके सुख की कामना करते हैं, वस्तुतः वे ही नाना प्रक के सुखों व उत्तम भोगों को प्राप्त होते हैं । अतएव सभी अ जनों को चाहिए कि –

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥
कदापि न भूलें ।

(५४)

ं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
ा ब्रह्माणि यवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ,।
ऋ० ७-७० ॥

अर्थ— परमात्मा आदेश करता है कि हे विद्वानो ! तुम वेद-सुधा का सदा सेवन करो क्योंकि यह सभी कामनाओं पूरा करने वाली है । अतएव नित्य वैदिक स्तोत्रों, प्रार्थनाओं मन लगाकर पाठ करो इससे तुम्हारा जीवन पवित्र होकर मात्मा को प्राप्त कर सकेगा ।



(५५)

यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मिणे ।
महे शुष्माय येमिरे ।
ऋ० ८-७ ।।

अर्थ— इस मन्त्र में उत्साह का महत्व वर्णन किया गया उत्साही एवं साहसी व्यक्ति के मार्ग को बड़ी बड़ी नदियाँ व ा भी छोड़ देते हैं ।

सारांश यह है कि उत्साही एवं साहसी मनुष्य के मार्ग में ी प्रकार का व्यवधान नहीं पड़ सकता । वह सब को दूर कर ा कार्य सिद्ध कर लेता है । देखिए--

'क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे'



(५६)

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु
ऋ० ८-१७ ।

अर्थः— हे परमात्मा ! हमारे सारे कार्य सुगमता पू
सम्पन्न हों । इस प्रकार जिससे भी हम घृणा या राग-द्वेष र
वह तुम्हारा ही अंश होगा । अतएव हम किसी से ईर्ष्या, र
द्वेष व वैर-भाव न रक्खें । ऐसी बुद्धि प्रदान करो ।

सारांश यह है कि हम असत् पथ पर कभी न चलें । क्यों
" असत्यपथि वर्त्तमानं तु सहोदरोऽपि विमुञ्चति
अर्थात् असत् पथ पर चलने वाले व्यक्ति को सभी लोग
देते हैं ।



(५७)

ते हि पुत्रासो आदिते विदुः द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ।
ऋ० ८-१८ ।

अथः— आचार्य एवं विद्वज्जन सदा लोगों को नाना प्र
से सदुपदेश देकर तमाम कष्टों से बचाते है । उन्हें कुमार्ग
हटाकर सन्मार्ग पर लाते हैं । अतः राजा (अधिकारी)
कर्त्तव्य है कि वह ऐसे उपाय करे जिससे देश व समाज में
आचार्यों व विद्वानों की संख्या में वृद्धि हो ।



(५८)

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् ।
न सोमो अप्रता पपे ॥
ऋ० ८-३२ ॥

अर्थः— इस संसार में प्रत्येक व्यक्ति पर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण होते हैं। परन्तु जो व्यक्ति (कोई भी हो) ब्राह्मण वृत्ति से सर्वहितकारी कार्य करता है, वह ही सच्चा ब्राह्मण है ओर ऐसे व्यक्ति पर कभी कोई ऋण नहीं चढ़ाता।



(५६)

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे य देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो
अभिसञ्चरन्ति ॥
ऋ० ८-४८ ॥

अर्थः— जो व्यक्ति बुद्धिमान् परिश्रमी तथा स्वाध्यायशील होने हैं उन्हें ही मधुर व स्वादिष्ट अन्न खाने को प्राप्त होता है। आलसी, दुराचारी व असंयमी व्यक्ति (महाराज व श्रेष्ठ भी है) ऐसा अन्न नहीं प्राप्त कर सकता, न उपभोग कर सकता है। क्योंकि उसकी क्षुधा मन्द पड़ जाती है। उदराशय बिगड़ जाता है व पाचन शक्ति कम हो जाती है। अतः मनुष्य को चाहिये कि वह परिश्रम करे तथा स्वाध्याय करता रहे।



(६०)

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् ।

ईशानं राय ईमहे ॥

ऋ० ८-४६ ॥

अर्थः – हे मनुष्यो ! तुम अपनी इच्छायें अभिलाषायें व आकांक्षायें पूरा करने के लिये परमात्मा से निवेदन करो, वही पूरा करेगा, कोई मनुष्य नहीं पूरा कर सकता । अतः—

'यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥

अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के सामने दीन-हीन भाव नहीं व्यक्त करना चाहिये ।



(६१)

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।

अयामन्नुग्रो मघवा पुरुवसु गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥

ऋ० ८-५२ ॥

अर्थः— जो प्रभु हमें ऐश्वर्य प्रदान करता है, हम उसका गुणगान करें और कुमार्ग पर न चलें क्योंकि जो व्यक्ति दुराचारी व पापात्मा होता है, वह प्रभु का गुणगान भी करे तो उसे कोई लाभ नहीं होता और संसार उसे मिथ्याचारी कहता है ।



(६२)

वमोशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् ।
त्वं राजा जनानाम् ॥
ऋ ८-७४ ॥

अर्थः - परमात्मा सबका स्वामी व शासक है। सभी के
ति गुण व कर्म के अनुसार वह अनुग्रह और निग्रह करता रहता
। अतएव परमात्मा ही पूजनीय है।



(६३)

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः ।
यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥
ऋ० ८-७१ ॥

अर्थः— हे अग्निदेव ! जिस सदाचारी व उदार व्यक्ति की
तुम सहायता अथवा रक्षा करते हो, उसे कोई भी शक्ति कल्याण
ार्ग से नहीं हटा सकती, वह उत्तरोत्तर समृद्धि को प्राप्त होता
हता है।



(६४)

मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।
पुरा निदश्चिकीषते ॥
ऋ० ८-७८ ॥

अर्थः— ईश्वर सर्वज्ञ व सर्वान्तर्यामी है । उसकी दृष्टि से छिपकर कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता, वह सबके मन की बात को जानकर कर्मानुसार शुभाशुभ फल प्रदान करता है अतएव मन से भी किसी का अनिष्ट चिन्तन मत करो । क्योंकि दूसरे का अनिष्ट सोचने व करने के पूर्व परमात्मा ऐसा सोचने वाले को ही तदनुसार फल दे देता है। इसलिये ठीक ही कहा गया है :—

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'



(६५)

श्रुतं वो वृत्रहन्तमं प्र शर्धं चर्षणीनाम् ।
आशुषे राधसे महे ॥
ऋ० ८-६३ ॥

अर्थः— मनुष्य का मन बल ही उसकी कामनाएँ पूरा कर जीवन में सफलता दिला सकता है। अतएव अपने मनोबल को सदैव ऊंचा रक्खो। उसे कभी गिरने न दो। विक्टोरियन कवि टेनीसन ने कहा है :—

Made weak by time and fate but strong in will.
To strive to seek to find and not to yield.



(६६)

उभा देवा नृचक्षुषा होतारा दैव्या हुवे ।
पवमान इन्द्रो वृषा ॥
ऋ० ९-५ ॥

अर्थः— केवल कर्मयोगी एवं ज्ञानयोगी पुरुष ही परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है, दूसरा नहीं क्योंकि कर्मद्वारा मनुष्य शक्ति बढ़ाकर ईश्वर की दया का पात्र बनता है तथा ज्ञान द्वारा उसका साक्षात्कार करता है ।



(६७)

ये सोमासो विपश्चितोऽपां न यंत्यूर्मयः ।
वनानि महिषा इव ॥
ऋ० ९-३४ ॥

अर्थः— जिस प्रकार राका शशि में आकर्षण शक्ति होती है, नेत्रज्योति बढ़ती है उसी प्रकार वेद-वाणी में आकर्षण शक्ति होती है तथा वह अमरत्व प्रदान करती है । सारांश यह है कि आह्लादक धर्म की ओर सभी आकृष्ट होते हैं इसी प्रकार वेद-वाणी शुद्धान्तः करण वाले लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करती है ।



(६८)

शं रोदसी सुबन्धवे यह्वी ऋतस्य मातरा ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो
मो षु ते किंचनाममत् ॥
ऋ० १०-६० ॥

अर्थः— भूमि एवं सूर्य के समान अच्छे माता पिता व गुरु आदि बालक के कल्याण करने वाले होते हैं। यदि संतान से कोई भूल हो जाय तो माता, पिता एवं गुरु पृथिवी के समान क्षमाशील रहें और सूर्य के समान सही मार्ग निर्देश करें तथा संतान को पाप मार्ग पर चलने से रोकें।



(६९)

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् ।
कवि विप्रेण वावृधे ॥
ऋ० ८-४४ ॥

अर्थः ईश्वर प्रेम पूर्वक सच्चे हृदय से स्मरण करने व स्तुति करने पर प्रसन्न होता है। वह परमात्मा की उपासना करने वाले के साथ सदैव रहता है। और जिसके साथ परमात्मा है उसका कभी भी कुछ बिगड़ नहीं सकता, क्योंकि—

'न यष्टि मादाय देवाः रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुं इच्छन्ति बुद्ध्या संयोजयन्तितम् ॥'



(७०)

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्तो युनक्षि रोहिता ।

पणीन्नयक्रमोरभि विश्वात्राजन्नराधमः ॥

ऋ० १०-६१ ॥

अर्थ—राजा (अधिकारी) को उचित है कि परमपिता परमात्मा के उपासक एवं पापकर्म रहित लोगों के प्रति न्याय करे, सत्य को सत्य एवं असत्य को असत्य कहे। अर्थात् गाय भी दूध देती है, बैल भी दूध देता है, ऐसी बात न करे। ऐसे पणि (व्यापारियों) को भी नियन्त्रित करे जो अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं करते अर्थात् जो आवश्यक वस्तुओं को एकत्र (होर्ड) कर तत्पश्चात् उन्हें ऊँचे दामों पर विक्रय करते हैं। ऐसे व्यापारी देश द्रोही होते हैं।



(७१)

द्यावा पृथिवी जनयन्नभि व्रताप

ओषधीर्वनिनानि यज्ञिया ॥

अन्तरिक्षं स्व रा पप्रुरूतये वशं देवास

स्तन्वी ३ नि मामृजुः ॥

ऋ० १०-६३ ॥

अर्थ — अच्छे लोगों व विद्वज्जनों का कर्तव्य है कि यज्ञोपयोगी वृक्षों एव बल वर्धक अन्न व फलों को उत्तपन्न करें तथा लोगों को ऐसा करने के लिए प्रेरित भी करें। उनसे फिर यज्ञ-यागादिक शुभ कार्यों का अनुष्ठान करें जिससें लोग अनामय, स्वस्थ रहें तथा उनकी बुद्धि निर्मल तथा विचार शुद्ध रहें।



(७२)

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा
इयानास इवणयन्त धीभिः ॥
वृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभि रुदस्रिया
असृजत स्वयुग्भिः ॥
ऋ० १०-६८ ॥

अर्थ— यदि महाराजाधिराज/माण्डलिक राजा/राजकीय अधिकारी को सत्याचरण करने वाले श्रेष्ठ जन चाहते हैं अर्थात् सहयोग देते हैं तभी राष्ट्राध्यक्ष निन्दनीय कार्यों के करने से बचा रहता है साथ ही प्रजा भी नाना प्रकार के कष्टों व दुःखों से बची रहती है। यदि इसके विपरीत ऐसा अध्यक्ष चापलूसों से घिर जाता है तो वह निन्दनीय कार्य करनें को विवश होता है क्योंकि उससे इर्द गिर्द सही परामर्श देने वाले लोग होते ही नहीं। इससे राष्ट्रीय क्षति होती है। राजा (अधिकारी) के निकट रहने

वाले लोगों का कर्त्तव्य है कि वे उसे सही राय दें और उस राजा (अधिकारी) का कर्त्तव्य होता है कि वह ऐसे लोगों के सत्परामर्श को माने। क्योंकि प्रायः देखा गया है —

"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः"

राय हितकर हो और रुचिकर भी हो, ऐसा नहीं होता। सही बात हमेशा बुरी लगती है।



(७३)

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माक—
मन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप
उक्थशासश्चरन्ति ॥
ऋ० १०-८२ ॥

अर्थ— अज्ञानी, सांसारिक भोगों में आसक्त, कुतर्क करने वाले, श्रद्धारहित विद्या अथवा ज्ञान का मिथ्या गर्व करने वाले धर्म-कर्म से रहित व्यक्ति उस परमतत्व को नहीं जान पाते जो उनके ही भीतर अन्तःकरण रूप में विद्यमान है।



(७४)

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ।।

ऋ० १०-१७६ ।।

अर्थ— द्युलोक अपने नियम में अटल है, भूमि अपने क्षमा धर्म का कभी परित्याग नहीं करती और अपने नियममें अटल है। पर्वत अचल हैं। सारा संसार नियम बद्ध है।

इस प्रकार प्रकृति से शिक्षा लेकर जो राजा(अधिकारी) नियम एवं विधान का पालन करते / करवाते हुए शासन करता है उसी की राज सत्ता अटल रहती है और वह लोकप्रिय होता है।



(७५)

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्रचक्षय
कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हिते मद आ सोम मन्ये रेवां इव
प्र चरा पुष्टिमच्छ ।।

ऋ० ८-४८ ।।

अर्थ— ऐसे अन्न का सेवन करो जिससे अग्निवत् तेजस्वी बनो। नेत्र की ज्योति बढ़े, शरीर निरोग रहे। दिन प्रति दिन धन धान्य की वृद्धि हो। ऐसा तामसी भोजन मत करो जिससे हानि हो मद्य पान, द्यूतक्रीडा व लम्पटता आदि कुकर्मों में न फंसो इसमें धन का अपव्यय होता है तथा अन्ततोगत्वा आत्म ग्लानि होती है। जब जब अन्नदेवता का दर्शन हो, ईश्वर को धन्यवाद करो तथा सदैव उदार भाव रक्खो।



(७६)

कोऽदात्कस्माऽ अदात्कामोऽदात्कामायादात्।
कामो दाता कामः प्रतिग्रहीता कामैतत्ते ॥
यजु० ७-४८॥

अर्थ— कर्म करने वाला जीव है, फल देने वाला ईश्वर है। कामना के बिना कोई कार्य नही होता कामना बीज रूप है। अतः मनुष्य को चाहिए कि धर्म संबंधी कामना करे अधर्म नहीं क्योंकि वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना सुनाना एवं वेदोक्त धर्माचरण कामना के बिना नहीं हो सकता। अतएव श्रेष्ठ कामों की इच्छा करनी चाहिए, अधर्म कार्यों को नहीं।



(७७)

मरूतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः ।

स सुगोपातमो जनः ॥

यजु० ८-३१ ॥

अर्थ— ब्रह्मचर्य, उत्तमशिक्षा, शरीर व आत्मा का बल आरोग्य, पुरुषार्थ ऐश्वर्य, आलस्य का परित्याग आदि गुण यम-नियम तथा उत्तम साहाय्य के बिना नहीं प्राप्त होते । गृहस्थाश्रम इनके बिना ठीक से नहीं चल पाता । अतएव इन सबका अभ्यास सभी को यत्नपूर्वक करना चाहिए ।



(७८)

भुञ्चन्तु मा शपथ्यादथो वरुण्यादुत ।

अथो यमस्य पड्वीशात सर्वस्माद् देव किल्विषात् ॥

यजु० १२-९० ॥

अर्थ — मनुष्यों को चाहिए कि प्रमाद वर्धक पदार्थों को छोड़कर सात्विक एवं पौष्टिक आहार करें । कभी ऐसा कार्य न करें कि मिथ्या शपथ लेनी पड़े । श्रेष्ठ जनों के प्रति अपराध, न्याय से विरोध व अन्याय का समर्थन न करें । साथ ही किसी से ईर्ष्या न करें ।

(७६)

अयमग्निः सहस्त्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।

मूर्द्धा कवी रयीणाम् ॥

यजु० १५-२१

अर्थः जिस प्रकार विद्या एवं युक्ति पूर्वक सेवन किया गया अग्नि प्रचुर धन धान्य प्राप्त कराता है, वैसे ही सुसेवित पुरुषार्थ मनुष्य को ऐश्वर्य प्रदान करता है।



(८०)

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सकाहस्ता निषङ्गिणः ।

तेषां सहस्रयोजने ऽव धन्वानि तन्मसि ।

यजु० १६-६१ ॥

अर्थ— मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं। यथा—ब्रह्मचर्य पालन, गुरुसेवा, वेदादि का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना व सुनाना, सत्सङ्ग, ईश्वर की उपासना, सत्यभाषण आदि। इनसे मनुष्य दैविक, दहिक व भौतिक त्रिविध कष्टों से पीड़ित नहीं होता। दूसरे हैं जिनसे समुद्रादि जलाशयों को पार करने में लोग समर्थ होते हैं, ऐसा ज्ञान-विज्ञान।



(८१)

ब्रह्माणी मे मतयः शं सुतासः

शुष्मऽइयर्ति प्रभृतो मेऽ अद्रिः ।

आ शासते प्रति हर्य्यन्त्युक्थेमा

हरी वहतस्ता नोऽअच्छ ॥

यजु० ३३-७८ ॥

अर्थ— हे विद्वानो ! जिस कार्य से ज्ञान तथा यज्ञजन्य मेघ (जो जीवन दाता है) की वृद्धि हो, उसे करो । जो लोग तुम से विद्या व सुशिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, उनको प्रेमपूर्वक विद्या-दान करो । जो लोग तुमसे अधिक विद्वान एवं ज्ञानी हों उनसे निसङ्कोच विद्याग्रहण करो । ऐसा आदेश परमात्मा तुम्हें देता है ।



(८२)

इच्छन्ति त्वा सोम्यासः सखायः

सुन्वन्ति सोमं दधति प्रयांसि ।

तितिक्षन्ते अभिशस्तिं जनाना

मिन्द्र त्वदा कश्चन हि प्रकेतः ॥

यजु० ३४-१८ ॥

अर्थः—जो व्यक्ति इस संसार में लाभ हानि निन्दा स्तुति हर्ष-अमर्ष को ईश्वरेच्छा समझ कर समान रूप से लेते हुए व्यवहार करते हैं तथा सभी के साथ उदार, मैत्री पूर्ण भाव रखते हैं,वे सवर्था पूजनीय हैं। ऐसे हो लोगों को शिक्षक अथवा उपदेशक होना चाहिए।



(८३)

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥
साम० पूर्वा १२-१ ॥

अर्थः—हे ईश्वर ! तू महान् है। ऋग्वेदी तेरी स्तुति करते हैं, सामवेदी तेरा गान करते हैं तू हमारी सब प्रकार से रक्षा कर।



(८४)

यो धारया पावकया परिप्रस्यन्दते सुतः ।
इन्दुरश्वो न कृत्व्यः ।
साम उत्त० १-५-२ ॥

अर्थः—पवित्र वेद- वाणी के द्वारा सारे व्यवहारों का साधक ऐश्वर्य सम्पन्न जो ज्ञान बल पैदा होता है, वह विद्युत् की भांति सर्वत्र फैलता है, सारांश यह कि ज्ञान - बल उत्पन्न करना चाहिए अन्यथा मनुष्य का नाश अवश्यम्भावी है 'विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुख.' ।



(८५)

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियं

वक्ता पतिर्धियो अस्या अदाभ्यः।

दधाति पुत्रः पित्रोरपीच्यां

नाम तृतीय मधि रोचर्न दिवः ॥

साम० उत्त०१-५-७०१ ॥

अर्थः—वेद- वाणी अत्यन्त हितकरारी ज्ञान का उपदेश करती है। इसका उपदेश देने वाला समस्त ज्ञान का स्वामी परमात्मा है। उसे कोई मार नहीं सकता। वह सर्वशक्तिमान है। पृथिवी एवं अन्तरिक्ष में छिपे हुए प्रकाशमान तीसरे द्युलोक को भी भली भांति धारण करता है; उसकी उपासना करने वाले व्यक्ति का कभी अकल्याण नहीं हो सकता।



(८६)

उपशिक्षापतस्थुषो भियसमा धेहि शत्रवे

पवमान विदा रयिम् ।

साम० उ० २-५-७६१ ॥

अर्थः—हे परमेश्वर ! हममें से कुपथगामी लोगों को शिक्षा दो ताकि वे सन्मार्ग पर चलें और कुमार्ग पर चलना छोड़ दें। शत्रुता करने वाले को भयभीत करो तथा हमें नाना प्रकार की सम्पत्तियां प्रदान करो ।



(८७)

ता हि शश्वन्त ईडत इत्था विप्रास ऊतये ।

स बाधो वाजसातये ॥

साम० उ० ३-२-८०१ ॥

अर्थः—बाधाएं उपस्थित होने पर विद्वान एवं मेधावी पुरुष अपनो रक्षार्थ, ज्ञान व अन्नादि के लिए परमेश्वर की स्तुति करते है वही महान हैं। सारांश यह है कि ऐसी स्थितियों में जो लोग परमेश्वर का सहारा लेते हैं, वे सर्वथा रक्षित रहते हैं।



(८८)

नू नो रयिं महामिन्दोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः ।

आ पवस्व सहस्रिणम् ॥

साम० उ० ५-४-६२६ ॥

अर्थः— हे सर्वशक्तिमान्, ऐश्वर्यशाली परमेश्वर! तू हमें असंख्य और महती सम्दाएँ प्राप्त करा, हम तेरी स्तुति करते हैं और तेरे लिये समर्पित हैं।



(८९)

सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि।

अथा नो वस्यसस्कृधि ॥

साम० उ० ७-२-१०४९ ॥

अर्थ— हे ईश्वर! तू हमें बल-बुद्धि प्रदान कर। हमारे दुर्गुण हमसे दूर हों। हमें धनधान्य प्राप्त हो। हम सर्वथा सुखी सवं समृद्ध बनें।



(९०)

अस्मभ्यं रोदसी रयिं मध्वो वाजस्य सातये।

श्रवो वसूनि सञ्जितम ॥

सा० उ० ८-२-११३६ ॥

अर्थः— हे परमेश्वर! आप हमें आनन्द दायक ज्ञान प्राप्त करने के लिये यश, धन तथा अन्य सम्पत्तियां प्रदान करें।



(६१)

अग्निः प्रियेषु धामसु कामो भूतस्य भव्यस्य ।

सम्राडेको विराजति ॥

साम० उ० १८-४-१७१० ॥

अर्थ—जो कुछ हो चुका और जो कुछ होने वाला है, उसका एक मात्र नियन्ता परमेश्वर है। वह सर्वत्र व्याप्त है उसी की इच्छा से संसार चलता है । मनुष्य कुछ नहीं कर सकता । यद्यपि–'प्राणी है यह सोचता समझता मैं पूर्ण स्वाधीन हूँ। इच्छा के अनुरूप काम सब मैं हूँ साध लेता सदा । ज्ञाता हैं कहते मनुष्य वश में है काल कर्मादि के । होती है घटना प्रवाह पतिता स्वाधीनता यन्त्रिता ।' इस प्रकार काल व कर्मके माध्यम से परमेश्वर सारे संसार को नियन्त्रित करता रहता है मनुष्य अपनी इच्छा से कुछ नहीं करता । अतएव उस सर्व शक्तिमान सर्वव्यापी परमात्मा की ही उपासना करनी योग्य है।



(६२)

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।

यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥

साम० उ० १६-२-१७३० ॥

अर्थः—हे शिल्प विद्धा के पढ़ने व पढ़ाने वालो ! तुम वृद्ध, अनुभवी एवं कुशल विद्धानों के शिल्पविद्या विषयक निर्देशों को जानने के पश्चात् शिल्प चातुर्य से यान का निर्माण करोगे यो वह यान पक्षियों के समान अन्तरिक्ष में उड़ सकेगा। सारांश यह है कि अनुभवी एवं ज्ञानी वृद्ध लोगों से लाभ उठाना चाहिए तभी मनुष्य जीवन में उन्नति करता है !



(६३)

ये ते पाशा वरुण सप्तसप्त त्रेधा तिष्ठन्ति
विषिता रूशन्तः ।
छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु ॥
अथर्व० ४-४-१६ ॥

अर्थः— जो लोग असत्य बोलते हैं उनको प्रभु अपने पाशों से बांध देता है। जो लोग सत्य बोलते हैं, उनको मुक्त करता है। अतः मनुष्य को कभी भी असत्य व्यवहार नहीं करना चाहिये।



(६४)

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः
परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं
वि शूत्रन्ताढि वि मृधो नुदस्वे ॥
साम० उ० २१-१-१८७३ ॥

अर्थः— हे परमेश्वर ! तुम विचरण शील, स्वतन्त्र सिंह के समान दुष्टों के लिये भयङ्कर हो। तुम प्रकृति से परे भी व्यापक हो। तुम पवित्र एवं सूक्ष्म ज्ञान के देने वाले हो। तुम हमारे काम–क्रोध लोभ मोह आदि शत्रुओं को नष्ट कर दो।



(६५)

अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः ।

तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन् ॥

अथर्व ५-१६-१३ ॥

अर्थः—जिस राज्य अथवा प्रशासन में सज्जनों का अपमान होता है, उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है, उस राष्ट्र का अत्यन्त शीघ्रता से पतन होता है।

निर्बल होने के कारण पराजित हुए मनुष्य की आंखों में जो आंसू आते है उन आंसुओं का जल वह व्यक्ति पीता है जो ज्ञानी व सच्चरित्र को सताता है। चूंकि ज्ञानोपदेश से ही राष्ट्र का सच्चा कल्याण होता है, अतएव ज्ञानी का सदैव सम्मान किया जाना चाहिये। जिससे वह ज्ञान का विस्तार करे। गीता में कहा गया है :—

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते"



(६६)

अनृणा अस्मिन्ननृणाः परस्मिन्तृतीये

लोके अनृणाः स्याम ।

ये देवयानाः पितृयाणाश्च लोकाः

सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम ॥

अथर्व० ६-११७-३ ॥

अर्थः— इस लोक में अऋण, परलोक में अऋण और तीसरे लोक में भी अऋण होवें । जो देव यान एवं पितृयान लोक हैं, उनके सब मार्गों में हम अऋण होकर चलें । अर्थात् मनुष्य पर देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण । यह तीन दायित्व होते हैं । जीवन में इनसे उऋण होने का प्रयत्न हमें करना चाहिए ।



(६७)

ग्रीष्मो हेमन्तः शिशिरो वसन्तः शरद् वर्षाः

स्विते नो दधात ।

आ नो गोषु भजता प्रजायां निवात इद्

वः शरणे स्याम ॥

अथर्व ६-५५-२ ॥

अर्थः—ऐसा आचरण करो कि छहों ऋतुओं में सर्वथा सुख प्राप्त हो। गौओं और प्रजाओं से हित साधन हो। घर में किसी प्रकार की कमी व दोष न हो।



(९८)

वैश्वानरो रश्मिभिर्नः पुनातु वातः प्राणेनेषिरो नमोभिः ।
द्यावा पृथिवी पयसा पयस्वती ऋतावरी
यज्ञिये नः पुनीताम ॥
अथर्व०-६-६२-१ ॥

अर्थः—सब मनुष्यों में रहने वाला अग्नि अपनी किरणों से हमारी शुद्धि करे। वायु प्राण रूप से हमें पवित्र करे। जल अपने विविध रसों से हमें पुष्ट करे। रस वाले, जलयुक्त पूजनीय द्युलोक व भूलोक अपने पोषक रस से हमें पवित्र करें। सारांश यह है कि मनसा वाचा कर्मणा हम सर्वथा पवित्र रहें।



(६६)

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवो ऽस्माकं मन्यो

अधिपा भवेह ।

प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा

तमुत्सं यत आबभूथ ।।

अथर्व ४-३१-५ ॥

अर्थः—उत्साह ही मनुष्य को इन्द्र के समान विजेता बनाता है । उत्साह कभी निराशा के शब्द नहीं बोलने देता । अतः हमारे अन्तः करण में उत्साह बना रहे । हम उन सभी महापुरुषों का स्मरण करते रहें जो सदेंव उत्साही रहे अथवा उत्साही रहते हैं । उत्साह के बिना मनुष्य निष्क्रिय हो जाता है । उत्साहो पुरुष संसार में सब कुछ प्राप्त कर लेता है । इसलिए उत्साही बने रहो ।



(१००)

तन्त्वा विप्रा विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।

हव्यवाहममर्त्यं सहोवृधम् ॥

ऋ० ३-१०-६ ॥

अर्थः— विद्वज्जन ही विद्वानों द्वारा किये गये कार्य एवं तदर्थ परिश्रम को समझ सकते हैं। अन्य साधारण व मूर्ख व्यक्ति नहीं। इसलिए पुरुषों को चाहिए कि वे विद्वज्जनों का ही आदर करें। इससे उनको उत्साह प्राप्त होगा। मूर्खों का आदर न करें। अन्यथा ग्लानि का विस्तार होगा।



(१०१)

तमिन्द्रं वाजयामसि महे वृत्राय हन्तवे।

स वृषा वृषभो भुवत् ॥

सा० उ० ६-६-१२२२ ॥

अर्थः— हे परमात्मन्। हमें बुराइयों को अपने से दूर रखने के लिए धर्म बुद्धि से युक्त आत्म बल प्रदान करो क्योंकि बल की उपासना करने वाले को ही आत्मा का साक्षात्कार हो सकता है।

'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः तस्माद् बलं उपास्व'।



पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओ३म् शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

आर्य समाज के नियम

१- सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२- ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, नित्य पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसकी उपासना करने योग्य है।

३- वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना - सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४- सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५- सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएं।

६- संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७- सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिए।

८- अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

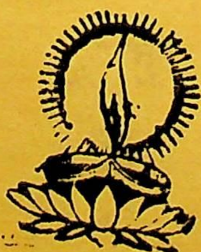
९- प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०- सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।









मुद्रक :—
शक्ति प्रेस, (नहर पुल) कनखल
फोन : ७७